गायत्री मंत्र के व अक्षर की व्याख्या

पवित्र जीवन

पवित्र जीवन

गायत्री मंत्र का बारहवाँ अक्षर 'व' मनुष्य को पवित्र जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देता है–

वसतां ना पवित्रः सन् बाह्यतोऽभ्यन्तरस्तथा ।
यतः पवित्रताया हि रिजतेऽति प्रसन्नता ।।

अर्थात्–"मनुष्य को बाहर और भीतर से पवित्र रहना चाहिए क्योंकि पवित्रता में ही प्रसन्नता रहती है ।"

पवित्रता में चित्त की प्रसन्नता, शीतलता, शान्ति, निश्चिन्तता, प्रतिष्ठा और सचाई छिपी रहती है । कूड़ा–करकट, मैल–विकार, पाप, गन्दगी, दुर्गन्ध, सड़न, अव्यवस्था और घिचपिच से मनुष्य की आन्तरिक निकृष्टता प्रकट होती है ।

आलस्य और दरिद्र, पाप और पतन जहाँ रहते हैं वहीं मलिनता या गन्दगी का निवास रहता है । जो ऐसी प्रकृति के हैं उनके वस्त्र, घर, सामान, शरीर, मन, व्यवहार, वचन, लेन–देन सबमें गन्दगी और अव्यवस्था भरी रहती है । इसके विपरीत जहाँ चैतन्यता, जागरूकता, सुरुचि, सात्विकता होगी वहाँ सबसे पहले स्वच्छता की ओर ध्यान जायगा । सफाई, सादगी और सुव्यवस्था में ही सौन्दर्य है, इसी को पवित्रता कहते हैं ।

गन्दे खाद से गुलाब के सुन्दर फूल पैदा होते हैं, जिसे मलिनता को साफ करने में हिचक न होगी वही सौन्दर्य का सच्चा उपासक कहा जायगा । मलिनता से घृणा होनी चाहिए, पर उसे हटाने या दूर करने में तत्परता होनी चाहिए । आलसी अथवा गन्दगी की आदत वाले प्रायः फुरसत न मिलने का बहाना करके अपनी कुरुचि पर पर्दा डाला करते हैं ।

पवित्रता एक आध्यात्मिक गुण है । आत्मा स्वभावतः पवित्र और सुन्दर है, इसलिए आत्म परायण व्यक्ति के विचार, व्यवहार तथा वस्तुएँ भी सदा स्वच्छ एवं सुन्दर रहते हैं । गन्दगीं उसे किसी भी रूप में नहीं सुहाती, गन्दे वातावरण में उसकी साँस घुटती है, इसलिए वह सफाई के लिए दूसरों का आसरा नहीं टटोलता, अपनी समस्त वस्तुओं को स्वच्छ बनाने के लिए वह सब से पहले अवकाश निकालता है ।

पवित्रता के कई भेद हैं । सबसे पहले शारीरिक स्वच्छता का नम्बर आता है, जिसमें वस्त्रों और निवास स्थान की सफाई भी आवश्यक होती है । दूसरी स्वच्छता मानसिक विचारों और भावों की होती है । आर्थिक

मामलों में भी, जैसे आजीविका, लेन-देन आदि में शुद्ध व्यवहार करना श्रेष्ठ गुण समझा जाता है । चौथी पवित्रता व्यावहारिक विषयों की है, जिसका आशय बातचीत और कार्यों के औचित्य से है । अन्तिम नम्बर आध्यात्मिक विषयों की पवित्रता का है, जिसके बिना हमारा धर्म-कर्म निरर्थक हो जाता है । इन सब में शारीरिक और मानसिक पवित्रता से लोगों का विशेष काम पड़ा करता है, क्योंकि इनके होने से अन्य विषयों में स्वयं ही पवित्र भावों का उदय होता है ।

स्वच्छता दैवी गुण है

स्वच्छता या सफाई वास्तव में एक दैवी गुण है । अंग्रेजी में एक कहावत है जिसका तात्पर्य है कि सफाई से रहना देवत्व के समीप रहना है । जो साफ रहता है, अपने रहन-सहन द्वारा देवत्व प्रकट करता है । सफाई से सौन्दर्य की वृद्धि होती है । वस्तुओं का जीवन बढ़ जाता है । मशीनों की सफाई करने या समय-समय पर कराते रहने का तात्पर्य उसकी कार्य शक्तियों को बढ़ा लेना है ।

जब किसी मशीन को ओवरहाल (आमूल नए ढंग से फिटिंग) किया जाता है, तो न केवल सफाई हो जाती है, प्रत्युत सब पुर्जों को साफ कर नए सिरे से रखने के कारण उनमें नई स्फूर्ति का संचार होता है । जो पुर्जे चूँ-चूँ, चर्र-चर्र करते थे, वह थोड़े से तेल से सहज स्निग्ध होकर मजे में चलने लगते हैं । उनकी कार्य शक्ति बढ़ जाती है ।

इसी प्रकार मानव शरीर रूपी मशीन का हाल है । हमारे शरीर में अनेक छोटे-बड़े सूक्ष्म पुर्जे हैं । हमारा शरीर, मस्तिष्क, हृदय, फेंफड़े, उदर अनेक ग्रन्थियों से मिलकर बना है । इन पुर्जों में निरन्तर भोजन को पचाकर रक्त बनाने की क्रिया के कारण मैल एकत्र हो जाता है । जीवन में पैसे के लिए हम शरीर को अधिक घिस डालते हैं । प्रायः नेत्रों की ज्योति क्षीण पड़ जाती है, गाल पिचक जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, पाचन विकार उत्पन्न हो जाते हैं । ये सब रोग शरीर की अधिक घिसावट के दुष्परिणाम हैं । यदि हम शरीर की आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की सफाई का ध्यान रखें, तो शरीर, मन, प्राण में नई स्फूर्ति, नई शक्ति और प्रेरणा का संचार हो सकता है ।

भारत में जिस तत्व की बड़ी कमी मिलती है, वह सफाई है । सुव्यवस्था और सौन्दर्य इसके पुत्र-पुत्री हैं । लोगों के पास मान, प्रतिष्ठा, उत्साह है, पर स्वच्छता और सुव्यवस्था का बड़ा अभाव है । दुकानें,

गलियाँ, सार्वजनिक स्थान, भोजन तथा मिठाई के बाजारों में आप पत्तों के ढेर, जूठन, मैल, मक्खियाँ, नालियों में भरा हुआ कीचड़, मैला देखकर हमें हिन्दुस्तानियों की गन्दी आदतों पर लज्जा आती है । लोग बड़ी धर्मशालाएँ बनाते हैं, पर उनमें सफाई का ध्यान नहीं देते । टट्टियों तथा नालियों की सफाई पर व्यय नहीं करते । सार्वजनिक टट्टियों में सभ्य व्यक्ति को जाते हुए शर्म आती है । मेहतर अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते । अधिकारी वर्ग देखरेख के मामले में शिथिलता दिखलाता है । टट्टी के घिनौने स्वरूप रेल के डिब्बों और रेल के स्टेशनों पर पाई जाने वाली टट्टियों में भी देखे जाते हैं । जितना बड़ा शहर, उसकी गलियों में उतना ही अन्धेरा, बदबू और गन्दगी पाई जाती है । जहाँ मवेशी बाँधे जाते हैं, वहाँ का तो कहना ही क्या ?

सफाई एक सार्वजनिक आदत है । हम भारतीयों को अपनी सार्वजनिक गन्दगी पर लाज आनी चाहिए । जहाँ दूसरे राष्ट्रों में सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, सरकार पर्याप्त व्यय करती है, म्यूनिसिपैलिटी बहुत ध्यान देती है, प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक सफाई की ओर ध्यान देता है, वहाँ हमारे यहाँ कोई भी इस ओर ध्यान नहीं देता । नागरिक विशेषतः ग्रामीण व्यक्ति और नारी समाज इतने पिछड़े हुए हैं कि जहाँ कहीं जाते हैं सार्वजनिक स्थानों को गन्दा छोड़ जाते हैं और कितने ही व्यक्ति उनसे फिसल कर घायल होते हैं । सिनेमा हालों में मूँगफली के ढेर सारे छिलके, बीड़ी–सिगरेट के टुकड़े, पान की पीक यत्र–तत्र फैले हुए मिलते हैं । स्टेशनों को हर आध घण्टे पश्चात् साफ किया जाता है, पर वह गन्दा होता जाता है । ये बातें हमारी गन्दी आदत की सूचक हैं । हमें अपनी इन आदतों पर लज्जित होना चाहिए ।

शारीरिक स्वच्छता के दो अंग हैं–बाह्य तथा आन्तरिक सफाई । नित्य प्रति मालिश और व्यायाम के पश्चात् स्नान करने से और खुरदरे तौलिए से पोंछने से शरीर स्वच्छ होता है । प्रायः लोग बार–बार स्नान करने का क्रम करते हैं, जल में पड़े रहते हैं, असंख्य गोते लगाते हैं, बाल्टी पर बाल्टी पानी डालते हैं लेकिन सच्चे अर्थों में यह स्नान नहीं है । जब तक शरीर के रोमकूप स्वच्छ नहीं होते और त्वचा का संचित मल दूर नहीं होता, तब तक शरीर की स्वच्छता नहीं हो सकती । खुरदरे तौलिए को पानी में भिगोकर त्वचा के पोंछने से त्वचा साफ

होती है । नाखूनों को काटना, नासिका द्वार को स्वच्छ रखना, जिह्वा की स्वच्छता से हमारे बहुसंख्यक भाई प्रायः उपेक्षित रहते हैं । इन पर बड़ा ध्यान देने की आवश्यकता है ।

आन्तरिक स्वच्छता का साधन उपवास है । पन्द्रह दिन पश्चात् उपवास करने से संचिप्त भोजन पच जाता है, मल पदार्थ निकल जाते हैं और पेट की बीमारियाँ दूर होती हैं । हमारे देश में उपवास धर्म के अन्तर्गत इसीलिए रखा गया है कि सब इससे लाभ उठा सकें । यथासाध्य ठण्डे जल से स्नान करें । मूत्र–त्याग और मल त्याग के पश्चात् इन्द्रियों को शीतल जल से धो डालें ।

आपका घर वह स्थान है, जिसके वातावरण में आप पलते, वायु पाते, संसर्ग से प्रभावित होते हैं । प्रतिदिन हमारा १४–१५ घण्टे का जीवन घर में ही व्यतीत होता है । घर की चहारदीवारी, कमरों, फर्नीचर, वस्त्रों तथा विभिन्न स्थानों पर जो समय हम व्यतीत करते हैं, उनसे हमारी आदतों और स्वास्थ्य का निर्माण होता है । घर जितना ही स्वच्छ और सुव्यवस्थित होगा, उससे उतनी ही स्वच्छ वायु तथा आनन्द प्राप्त हो सकेगा । यदि आप दुकानदार हैं या आफिस में आठ घण्टे व्यतीत करते हैं, तो दुकान और आफिस के वातावरण का प्रभाव गुप्त रूप से पड़ता रहता है । मान लीजिए आप तम्बाकू, शराब, गांजा, भांग, चरस अथवा जूते की दुकान करते हैं । इन वस्तुओं की बदबू निरन्तर आपके स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती रहती है । अतः हमें चाहिए कि हम अपने घर, दूकान या आफिसों को खिलौनों की तरह साफ–स्वच्छ रखें ।

स्वच्छ घर में रहने वाले की आत्मा प्रसन्न रहती है । आप स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहन कर देखें, मन कितना खिला रहता है । उसी प्रकार सफेद पुता हुआ कमरा, स्वच्छ फर्नीचर, स्वच्छ वस्त्र, स्नान से स्वच्छ शरीर आत्मा को प्रसन्न करने वाले हैं ।

स्वच्छ रख कर हम अपने घर के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं और चीजों के जीवन को बढ़ा लेते हैं । हमें आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है । सफाई प्रकृति का अंग बन जाने से सर्वत्र सौंन्दर्य की सृष्टि करती है ।

आफिस, घर और दुकान में छोटी–बड़ी असंख्य वस्तुएँ होती हैं । इनमें कुछ ऐसी होती हैं जिनका नित्य प्रयोग होता है, तो कुछ ऐसी होती हैं जो देर से निकलती हैं और काम में आती हैं । कुशल व्यक्ति अपने घर, दुकान या आफिस की वस्तुओं की व्यवस्था इस प्रकार करते

हैं कि आवश्यकता पड़ते ही, तुरन्त जरूरत की चीज मिल जाती है । ग्राहक आकर जिस छोटी वस्तु की माँग करता है, चतुर दुकानदार एक क्षण में उसे प्रस्तुत कर देता है । घर में दवाई से लेकर सुई, डोरा, आलपिन तक एक क्षण में मिल जानी चाहिए । आफिस की फाइल का कोई भी कागज जरा-सी देर में अफसर के सन्मुख आना चाहिए । पुस्तकालय में जो पुस्तक माँगी जाय, तुरन्त पाठक को प्राप्त होनी चाहिए ।

अव्यवस्थित दुकानदार, अफसर या परिवार का मुखिया उस व्यक्ति की तरह है, जो उर्द, मूँग, मसूर, गेहूँ, जौ इत्यादि भिन्न-भिन्न अनाजों को एक साथ मिश्रित कर लेता है और आवश्यकता के समय उनको पृथक-पृथक करने में व्यर्थ शक्ति का क्षय करता है । वह न गेहूँ निकाल सकता है, न उर्द, न मूँग और यदि निकालता भी है तो उस समय जब उसके हाथ से अवसर निकल जाता है । यदि प्रारम्भ से ही वह व्यवस्था से इन अनाजों को अलग-अलग रखता तो क्यों इतना श्रम और समय नष्ट होता ।

प्रायः अफसर लोग चिल्लाया करते हैं और क्लर्क फाइलों को, भिन्न-भिन्न पत्रों को, रेफरेन्सों को तलाश करते हुए थक जाते हैं । दुकानदार वस्तुओं को गलत स्थान पर रखकर झींकते रहते हैं । घर में दियासलाई, चाकू, साबुन, तौलिया, रूमाल, हाथ का थैला, पेन्सिल, कलम इत्यादि प्रायः अव्यवस्थित होने से बड़ा हल्ला मचता रहता है । जो डाक्टर अपने यहाँ विभिन्न दवाइयों को क्रम व्यवस्था से नहीं रखते, वे पछताते रहते हैं । सर्वत्र व्यवस्था की आवश्यकता है ।

आप चाहे जिस स्थिति, वर्ग या स्तर के व्यक्ति हों, क्रम व्यवस्था की आपको सबसे अधिक आवश्यकता है । व्यवस्था से आपका कार्य सरल होगा, समय की बचत होगी और आप जल्दी काम कर सकेंगे । मन में किसी प्रकार की उलझन उपस्थित न होगी । काम करने को तबियत करेगी ।

जिस व्यक्ति में अपनी वस्तुओं को एक निश्चित क्रम और व्यवस्था से रखने की आदत होती है, वह उनको उचित स्थान पर रखकर सौन्दर्य की सृष्टि करता है । पं. जवाहलाल नेहरू जब जेल में थे, तो उनके पास कुछ गिनी-चुनी वस्तुएँ थीं-हजामत का सामान, कंघा, कलम, दवात, कागज इत्यादि । लेकिन वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि उन्होंने उन्हीं को क्रम और व्यवस्था से रखकर सौन्दर्य की सृष्टि की और

अपनी आत्मा को आनन्दित किया था । आपके पास जो भी वस्तुएँ हों, उन्हीं को किसी निश्चित क्रम–व्यवस्था से रखकर सौन्दर्य और उपयोगिता में वृद्धि कर सकते हैं ।

अपने घर में पृथक–पृथक कमरों को लेकर यह निश्चित कीजिए कि आप उस कमरे को किस कार्य के लिए रखना चाहते हैं–बैठक, स्टोर, प्राइवेट कमरा, औरतों के बैठने–उठने का कमरा, भोजन करने का कमरा इत्यादि । प्रत्येक कमरे को उसी कार्य के लिए क्रमवार सुव्यवस्थित कीजिए ।

मान लीजिए बाहर वाले एक कमरे को आप बैठक बनाना चाहते हैं । इसमें एक मेज, एक कुर्सी, सोफासैट या फर्श तकिया इत्यादि रखिए, पाँव पोंछने के लिए पायदान, दीवारों पर कुछ कलेण्डर और एक–दो अच्छे चित्र, खूँटी और जूता रखने का स्थान । इस कमरे में व्यर्थ की चीजें, खूँटियों पर कपड़े या फालतू वस्तएँ नहीं रहनी चाहिए । मेन्टलपीस पर कलात्मक रूप से सजे हुए फूलदान और एक दो फोटो । अधिक सजावट भी असभ्यता की निशानी है ।

आपके स्टोर में अनाज, दालें, महीने भर के कुटे हुए मसाले, तेल, घी, गुड़ चीनी, एक ओर वस्त्रों के सन्दूक तथा अन्य घर की वस्तुएँ रहनी चाहिए । यदि मकान छोटा हो तो क्रम से रखी हुई लकड़ियाँ और उपले भी रह सकते हैं । मिट्टी का तेल और लालटेन भी रखी जा सकती है । सोने के कमरे में भी वस्तुएँ कम ही रहें क्योंकि फालतू वस्तुओं से मच्छर होते हैं । रसोई में भी भिन्न–भिन्न बर्तन क्रम से सजे रहें । सीने, काढ़ने, बुनने और कातने का सब सामान एक स्थान पर सजा रहे । मशीन हो तो स्वच्छ तेल लगी हुई रहे । पुस्तकालाय हो तो उसकी सब पुस्तकें विषयवार सजी रहें, जिससे जिस समय आवश्यकता हो निकाली जा सकें । संक्षेप में आपके पास जो भी स्थान हो, जो–जो वस्तुएँ हों, वे स्वच्छ से स्वच्छ और सबसे आकर्षक रूप में मौजूद रहे, जिन्हें देखकर आपको भी प्रसन्नता हो और देखने वाले भी प्रसन्न रहें ।

हमारे घरों में वस्त्रों की जो दुरावस्था है, उसे देखकर क्षोभ होता है । प्रायः स्त्रियाँ मँहगे से मँहगे रेशमी वस्त्र खरीदती हैं, पर उनके साथ अकथनीय अत्याचार होता है । इधर–उधर फेंका जाता है, आले या कौने में मैले पड़े रहते हैं, धोबी २०–२० दिन में धोकर वापस नहीं लाता । यदि हम वस्त्रों की उचित व्यवस्था रखें, मैला होने पर स्वयं उसे

धो लिया करें, तो हम आधे वस्त्रों में मजे से काम चला सकते हैं, रुपया बचा सकते हैं और स्वच्छ भी रह सकते हैं । मँहगे कपड़े बना लेना आसान है, पर उनकी सेवा करना, उनसे अधिकतम लाभ उठाना कुशलता और चतुराई का काम है ।

वस्त्रों के सन्दूक या आलमारी में वस्त्रों को करीने से रखना चाहिए । इससे वस्त्रों के कौने सिकुड़ने या मुड़ने नहीं पाते और इस्तरी नहीं टूटती । रेशमी साड़ियों को कागज में लपेट कर पृथक रखना चाहिए । फिनायल की गोलियाँ रखने से वस्त्र, विशेषतः साड़ियाँ कीड़ों से बची रहती हैं ।

वस्तुओं की सम्हाल और व्यवस्था और भी आवश्यक है । सम्हाल रखने से मशीन का जीवन कई गुना बढ़ जाता है, जबकि तनिक-सी लापरवाही से कीमती चीजें भी जल्दी ही नष्ट हो जाती हैं । यदि प्रत्येक वस्तु को उचित देख-रेख से रखा जाय, तो वह कई गुना अधिक काम देती है । क्या आप जानते हैं कि आपका फाउण्टेनपेन घिस कर नहीं खोकर नष्ट होता है । पेंसिलें कभी पूरी काम तरह काम में नहीं आतीं, कोई माँग लेता है अथवा खो जाती हैं । चाकू और रूमाल भी प्रायः खोते हैं । कीमती साड़ियाँ पहनी नहीं जाती, सन्दूकों में रखी रहती हैं और कीड़ों का भोजन बनकर नष्ट होती हैं । जिस साड़ी पर सबसे अधिक व्यय होता है, वह उतनी ही कम पहनी जाती है । आभूषणों पर औरतें प्राण देती हैं, किन्तु वे खोकर नष्ट होते हैं, इनके कारण चोरियाँ होती हैं, औरतें तक चुराली जाती हैं और अपमानित होती हैं ।

यदि आप अपनी थोड़ी-सी वस्तुओं को क्रम व्यवस्था से सजाके रखें, तो इन्हीं की सहायता से हम घर की शोभा में वृद्धि कर सकते हैं । सौन्दर्य के लिए अधिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है । जो थोड़ी-सी चीजें हैं, उन्हीं की सहायता से आप सौन्दर्य की उत्पत्ति कर सकते हैं । बस आपकी दृष्टि में कलात्मकता अपेक्षित है । कलात्मक दृष्टि से हर वस्तु का एक नियत स्थान है, जहाँ वह सुन्दरतम लग सकती है । घर की शोभा इस बात में है कि आप उस स्थान को खोज निकालें । प्रत्येक वस्तु को उठा कर नियत स्थान पर रखें । आपके कमरे में एक चित्र हो या कलैण्डर लेकिन यदि वही स्वच्छ हो, मैल का निशान न हो तो वही आकर्षक प्रतीत होता है ।

सौन्दर्य व्यवस्था पर निर्भर है । जूते कैसे नगण्य हैं, किन्तु यदि

आप उन्हीं को पालिश कर सजाकर क्रमानुसार रखें, अपने सन्दूकों को स्वच्छ कर, उन पर स्वच्छ वस्त्र बिछा लिया करें, चारपाइयों की चादरों को गन्दा न होने दें, कुर्सियों, मेजों, पुस्तकों की धूल झाड़ते रहें, तो निश्चय जानिए कि घर की चीजों में ही सौन्दर्य प्रस्फुटित होगा और आपको अपने साधारण घर में ही आनन्द प्राप्त होगा । आत्मा प्रसन्न रहेगी और मन में यह साहस रहेगा कि आप अच्छे तरीके से रहते हैं ।

जीवन में अधिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जो थोड़ा-सी वस्तुएँ हों उन्हीं से सबसे अधिक, सबसे सुन्दर क्रम-व्यवस्था से काम लेने में आनन्द है । जिनके पास अधिक वस्तुएँ पड़ी रहती हैं, उनमें से आधी ही काम में आती हैं, बेकार पड़ी रहती हैं । आप अधिक वस्तुओं के संचय के मोह में न पड़ें वरन् अपनी-अपनी थोड़ी-सी वस्तुओं को सम्हाल कर प्रयोग में लायें ।

सार्वजनिक स्थानों की सफाई, सुव्यवस्था एवं सौन्दर्य का उत्तरदायित्व आप पर है । आप एक श्रेष्ठ नागरिक हैं । समाज की उन्नति में आपका महत्वपूर्ण स्थान है । आपकी आदतों से समाज बनता, बिगड़ता, समुन्नत-अवनत होता है । अतः आप सार्वजनिक स्थानों को कार्य में लेते समय उनकी सफाई और सुव्यवस्था के सम्बन्ध में बड़े सावधान रहें ।

यदि आप धर्मशाला में टिके हैं, तो उसके कमरे या इर्द-गिर्द की सफाई का ध्यान रखें, कमरे को वैसा ही सुन्दर छोड़कर जायें, जैसा वह आपको मिला था । पब्लिक पाखानों का ठीक स्तेमाल करें । पेशाबघरों में सर्वत्र ध्यान रखें । पब्लिक पार्क, मन्दिर, सार्वजनिक बिल्डिंगों को बिगड़ने न दें । रेल के डिब्बे हम सबके काम आते हैं, किन्तु हम सफर के पश्चात् उन्हें छिलकों, पत्तों, पानी, धूल-मिट्टी से सना हुआ, जूठन से परिपूर्ण छोड़कर उठते हैं । यह हमारी गन्दी आदतों की परिचायक, गन्दी वृत्ति की द्योतक है । हर सार्वजनिक स्थान सबके बैठने-उठने के कार्य के लिए बना होता है । यदि हम में से प्रत्येक उसे अच्छी तरह प्रयोग में लाये तो वह अधिक दिन चल सकता है और सबको आकर्षक लग सकता है । सार्वजनिक स्थान हमारे हैं । जैसे हम अपनी वस्तु की सफाई और सुरक्षा का ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार हमें सार्वजनिक वस्तुओं तथा स्थानों का ध्यान रखना चाहिए ।

जो समर्थ हैं, अपनी शक्ति या रुपये का दान दे सकते हैं, उन्हें सार्वजनिक स्थानों, पार्कों, पुल, धर्मशालाओं, पब्लिक स्कूलों, टहलने के

स्थानों, मन्दिरों, स्नान के घाटों, रेल के डिब्बों, टट्टियों, प्लेटफार्मों की स्वच्छता और व्यवस्था का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए । अपने रुपये से मरम्मत या नई वस्तुएँ बनवाने में पीछे नहीं रहना चाहिए । रुपया दान देने के स्थान पर मरम्मत या पुताई करा देना अधिक श्रेयस्कर है ।

शरीर के भीतरी अंगों की सफाई

जिस प्रकार हम स्नान करके साबुन लगाकर, तौलिए से घिस कर शरीर के बाहरी भाग की सफाई कर डालते हैं, उसी प्रकार भीतरी अंगों की सफाई रहना भी परमावश्यक है । सच पूछा जाय तो गन्दगी हमारे शरीर के भीतर ही इकट्ठी रहती है और उसी का एक अंश पसीने तथा मैल के रूप में बाहर निकलता है, पर भीतर की सफाई कैसे हो यह सब लोग नहीं जानते । यों तो कहने के लिए हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने उद्देश्य की पूर्ति के लिए नेति, धौति, वस्ति आदि हठयोग के षट्कर्मों का आविष्कार किया था, जिससे प्रत्येक भीतरी अंश को धोकर उसी प्रकार स्वच्छ कर लिया जाता है, जैसे हम शरीर के ऊपरी भाग को धोते हैं । पर ये विधियाँ योगियों द्वारा की जाती हैं, साधारण मनुष्यों के लिए सुविधाजनक नहीं मानी जातीं । यह भी सम्भव है कि अधिकांश व्यक्ति उनको ठीक ढंग से न कर सकें और लाभ के स्थान पर कुछ हानि उठा लें ।

इसलिए साधारण मनुष्यों के लिए भीतरी अंगों की सफाई का दूसरा तरीका निकाला गया है और वह है-उपवास । वास्तव में हमारे शारीरिक यंत्र का निर्माण परमात्मा ने ऐसे ढंग से किया है कि अगर उसे स्वाभाविक ढंग से रखा जाय और प्रकृति के अनुकूल आचरण करने दिया जाय तो वह स्वयं अपनी भीतरी अंगों की सफाई कर सकता है । पर वर्तमान समय में मनुष्य ने प्रकृति के आदेश को मानना छोड़कर कृत्रिम ढंगों से रहना आरम्भ कर दिया है । उसका आहार-विहार अधिकांश में अस्वाभाविक हो गया है । इसलिए शरीरों में दूषित विकारों का अंश बढ़ जाता है । हमारी प्राण शक्ति इस विकार को हानिकारक समझकर बाहर निकालना चाहती है, पर हम नित्य प्रति दो-दो चार-चार बार भोजन करके उस पर बोझा पर बोझा लादते चले जाते हैं । इससे विवश होकर वह निष्क्रिय हो जाती है । उपवास करने से जब पेट खाली हो जाता है और पचाने के लिए शक्ति की आवश्यकता नहीं

होती, तब वही शक्ति शारीरिक विकारों को बाहर निकाल कर भीतरी अंगों की सफाई का कार्य करने लगती है । इसीलिए शरीर शास्त्र वेत्ताओं ने कहा है कि यदि आप स्वास्थ्य, यौवन, जीवन का आनन्द, स्वतंत्रता या शक्ति चाहते हैं तो उपवास कीजिए । आपको सौन्दर्य, विश्वास, हिम्मत, गौरव सरीखी निधियाँ प्राप्त करने के लिए भी उपवास करना चाहिए । उपवास से मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है, उसकी नैसर्गिक बुद्धि जगती है और वह प्रेम की विशालता का अनुभव कर पाता है ।

आन्तरिक विकारों के दुष्परिणाम

प्रायः जिस बात से शरीर में विकार तथा विविध व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, उनका प्रधान कारण शरीर का संचित मल है । हम अनाप-शनाप खाते हैं, अप्राकृतिक भोजन प्रयोग में लाते हैं, घर और कल-कारखानों या ऑफिसों में बन्द पड़े रहते हैं । अतः शरीर और अंतड़ियों में दूषित द्रव्य या मल जमा हो जाता है । यह संचित-मल कुछ दिनों तक तो पड़ा रहता है किन्तु बाद में रक्त को दूषित बना देता है, पाचन प्रणाली दोषयुक्त हो जाती है, मल विर्सन का कार्य करने वाले अवयव शिथिल हो जाते हैं, तब शरीर अन्तर्बाह्य रोगी व दुर्बल बन जाता है । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि उदर को कुछ काल के लिए विश्रांति दी जाय ।

भोजन बन्द कर देने से रक्त स्वच्छ और विषाक्त नहीं होने पाता और अनेक रोग उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती । हमारे शरीर के ज्ञानतन्तुओं पर बहुत जोर नहीं पड़ता । अतः शरीर का बल बढ़ता है और ओज क्षीण नहीं होने पाता । बिना पचा हुआ जो भी अंश पेट में फालतू पड़ा रहता है, वह धीरे-धीरे पचता है, पेट की तोंद नहीं निकल पाती । डॉ. लिंडहार लिखते हैं-"उपवास में शरीर को, अन्दर एकत्र भोजन का उपयोग शुरू करना होता है, किन्तु इसके पूर्व शरीर की बहुत-सी गन्दगी और विष निकल जाते हैं । जब हम यह जान लेते हैं कि हमारी सारी की सारी पाचन प्रणाली, जो २६ फुट लम्बी होती है और जिसका आरम्भ मुख और अन्त गुदा द्वार है, ऐसी सेलों और ग्रन्थियों से सुसज्जित है, जिनका काम गन्दगी निकालना है, तब लम्बे उपवास का शोधक प्रभाव अच्छी तरह समझ में आ जाता है ।

वास्तव में उपवास हमारे वर्षों के संचित मल को बाहर फेंक कर नई जीवन शक्ति फूँक देता है, शरीर की गन्दगी और विष उपवास काल में पिये गये जल द्वारा आसानी से निकलते रहते हैं । अनेक रोगियों को उपवास इसी कारण कराया जाता है, जिससे आँतों की श्लैष्मिक कला को संचित मल की सफाई का अवसर प्राप्त हो सके । जो पूरी सफाई चाहते हैं, वे किसी प्राकृतिक चिकित्सक की देखरेख में लम्बा उपवास करते हैं । यह संचित मल धीरे-धीरे निकलता है, पर सफाई होने के पश्चात् कब्ज पूरी तरह चला जाता है ।

उपवास से मानसिक पवित्रता

स्वास्थ्य, आरोग्यता, दीर्घायु के अतिरिक्त आध्यात्मिक दृष्टि से उपवास का विशेष महत्व है । शरीर की शुद्धि होने से मन पर भी प्रभाव पड़ता है । शरीर तथा मन दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । जब हमारा पेट भरा होता है, तो दृष्टि भी मैली हो जाती है, मन में कुविचार आते हैं, दुर्बल वासनाएँ उदीप्त हो उठती हैं, मानसिक विकारों में अभिवृद्धि होती है । राजसी भोजन से श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है और काम, क्रोध, रोगादि रिपु प्रबल हो उठते हैं । सम्पूर्ण पाप की जड़ अधिक भोजन, विशेष राजसी कामोत्तेजक भोजन करना है । पेट का विवेक, शान्ति, धर्मबुद्धि इस तत्व को ध्यान में रख हमारे पुरुष अतीत काल से उपवास को मानसिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य के लिए अपनाते रहे हैं । इस प्रकार के उपवासों में ईसा, मुहम्मद, महावीर के लम्बे उपवास सर्व विदित हैं । महात्मा गाँधी के उपवास इसी कोटि में आते हैं । महात्माजी ने जितने भी उपवास किए, सभी लगभग नैतिक ध्येय से किए ।

जब हमें भोजन, खान-पान से छुट्टी मिलती है और ये झंझट दूर हो जाते हैं, तब चित्त-वृत्ति अच्छी तरह उच्च विषयों पर एकाग्र हो पाती है । हमारी आंतरिक वृत्ति पवित्र एवं निर्दोष होती है । ब्रह्म में वृत्ति लीन करने के लिए उपवास सर्वोत्तम उपाय है । ऐसा प्रतीत होता है कि जिन व्यक्तियों ने ब्रह्मानन्द का वर्णन किया है वे अवश्य ही उपवास परायण रहे होंगे । उपवास के समय चिंतन तथा एकाग्रता बड़ी उत्तमता से कार्य करते हैं । उपवास काल का ज्ञान अधिक स्थाई और स्पष्ट होता है । ज्ञान प्रायः भोजन के बोझ से दब जाता है किन्तु भोजन से मुक्ति मिलने पर स्पष्ट, निर्विकार और स्थायी बनता है । गीता में कहा है-

विषया बिनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रस वर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।

उपवास में बहुत–सी नीच प्रवृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, अन्तर्दृष्टि पवित्र बनती है, वृत्तियाँ वश में रहती हैं, धर्म बुद्धि प्रबल बनती है, काम, क्रोध, लोभ आदि षट्रिपु क्षीण पड़ जाते हैं, प्राणशक्ति का प्रबल प्रवाह हमारे हृदय में बहने लगता है और शान्त रस उत्पन्न होता है । उपवास से इन्द्रियों का नर्तन, वृत्तियों का व्यर्थ इधर–उधर बहक जाना और एकाग्रता का अभाव दूर हो जाता है । ईश्वर पूजन, साधना तथा योग के चमत्कारों के लिए उपवास अमोघ औषधि है ।

महात्मा गाँधी जी ने उपवास के आध्यात्मिक पहलू पर बड़ा जोर दिया है । वे कहते हैं, "मैं तो सदा ही इसका पक्षपाती रहा हूँ, क्योंकि ब्रह्म परायण के लिए उपवास सदा सहायक है । ईश्वर और उपवास का गठजोड़–सा जान पड़ता है । खाऊपन (ठूँस–ठूँस कर भोजन करना) और ईश्वर का परस्पर बैर है ।" सत्याग्रही के लिए उपवास अन्तिम उपाय है, उसका न चूकने वाला शस्त्र है । गाँधी जी इसे आग्नेय अस्त्र कहते हैं और उनका दावा है कि उन्होंने उसे वैज्ञानिक रूप दिया है । उपवास से मनुष्य की दैवी सम्पदाएँ विकसित हो उठती हैं, उसके मन में दैवी शक्ति आ जाती है, अतः इस आध्यात्मिक साधन के प्रयोग के बड़े चमत्कार प्रतीत होते हैं ।

उपवास का प्रयोग आत्म–विकास के लिए भी होता है । यदि हम से जानबूझकर कोई गलती हो जाय और बाद में मन में ग्लानि का अनुभव हो तो हमें अपने आप को सजा देनी चाहिए । अपने प्रत्येक दोष पर कमजोरी को दूर करने के लिए उपवास का प्रयोग हो सकता है । अपने दोषों को देखकर उनका निवारण करना आत्मोद्धार का अचूक उपाय है । महापुरुषों का वचन है–"जैसे पुरुष पर–दोषों का निरूपण करने में अति कुशल है, यदि वैसे ही अपने दोषों को देखने में हो, तो ऐसा कौन है, जो संसार के कठोर बन्धन से मुक्त न हो जाय ।" प्रत्येक दोष पर उपवास कीजिए ।

"जब कभी आपके सन्मुख कोई उलझन उपस्थित होती है, तो आप उपवास क्यों कर बैठते हैं ।" यह प्रश्न महात्मा गाँधी जी से पूछा गया तो उन्होंने उपवास के आध्यात्मिक पहलू पर प्रकाश डालते हुए कहा था–

"इस प्रकार के प्रश्न मुझसे पहले भी किए गए हैं, किन्तु कदाचित् इन्हीं शब्दों में नहीं। इसका उत्तर सीधा और स्पष्ट है। अहिंसा के पुजारी के पास यही अन्तिम हथियार है। जब मानवी बुद्धि अपना कार्य न कर निरुपाय हो जाती है, तो अहिंसा का पथिक उपवास करता है। उपवास द्वारा शोधित शरीर से प्रार्थना की ओर चित्त-वृत्ति अधिक सूक्ष्मता और सत्यता से उन्मुख होती है अर्थात् उपवास एक आध्यात्मिक वस्तु है और उसकी मूल प्रवृत्ति ईश्वर की ओर होती है। मनुष्य को यदि यह यकीन हो जावे कि वह उचित और न्यायोचित है तो उसे उस कार्य को पूर्ण करने से कदापि नहीं रुकना चाहिए। इस प्रकार का आध्यात्मिक उपवास अन्तरात्मा की अन्तर्ध्वनि के उत्तर में किया जाता है, अतः उसमें जल्दबाजी का भय कम होता है।

धार्मिक उपवास और आत्मा की पवित्रता

उपवास द्वारा मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है, उसकी बुद्धि और विवेक जागृत होता है-यह देखकर ही हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने धर्म के अन्तर्गत उपवास को विशेष स्थान प्रदान किया है। इससे मनुष्य के मानसिक और वासनाजन्य विकार शान्त हो जाते हैं और विवेक तीव्र हो उठता है।

हिन्दू धर्म में प्रत्येक १५ दिन पश्चात् व्रत का विधान रक्खा गया है। एकादशी के अतिरिक्त प्रदोष और रविवार, भिन्न-भिन्न पुण्य तिथियों तथा पर्वों पर व्रत किया जाता है। हिन्दू धर्म में आन्तरिक शुद्धि के लिए व्रत प्रधान तत्व माना गया है। इसी कारण उसमें व्रतों की संख्या संसार के अन्य सब धर्मों से अधिक है। हमारे यहाँ निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकार के दूसरे उपवास भी हैं, किसी की मृत्यु पर लंघन करना, शोक मनाने का चिन्ह है। क्या प्रसन्नता, क्या क्लेश सभी में उपवास को प्रधानता दी गई है। जैन धर्म में लम्बे उपवासों पर आस्था है। जैन धर्म के ग्रन्थों में केवल नाना प्रकार के उपवासों का ही विधान नहीं, प्रत्युत बहुकाल व्यापी उपवासों का विधान है। जैनियों के उपवास सप्ताहों और महीनों तक चलते हैं। मिश्र में प्राचीन काल में कई धार्मिक पर्वों पर उपवास किया जाता था, किन्तु वह जन-साधारण के लिए अनिवार्य नहीं था। यहूदी अपने सातवें महीने के दसवें दिन उपवास रखते हैं। उनके धर्म में जो इस उपवास का उल्लंघन करता है वह

दण्डनीय है । इसके अन्तर्गत प्रातः से सायंकाल तक निराहार रहना पड़ता है । ईसाई धर्म में तथा ईसा की पाँचवी शताब्दी से पूर्व महात्मा सुकरात ने उन दिनों यूनान में प्रचलित कितने ही उपवासों का जिक्र किया है । रोमन जाति के व्यक्ति ईस्टर से पूर्व तीन सप्ताहों में शनिवार और रविवार के अतिरिक्त अन्य दिनों में उपवास किया करते थे । महात्मा ईसा ने स्वयं एक बार चालीस दिन और चालीस रात्रियों का उपवास किया था । योरोप में जब पापों का प्रभाव बढ़ा तो उपवासों को विशेष महत्व प्रदान किया गया । मुसलमान रमजान के महीने में अपने धर्म ग्रन्थों के अनुसार तीस दिन तक रोजे रखते हैं । प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त्त में कुछ खाकर सूर्यास्त के पश्चात् रोजा टूटता है । तात्पर्य यह हैं कि सभी प्रधान धर्मों में उपवास को विशेष महत्व प्रदान किया गया है । सभी ने एक स्वर से उसकी उपयोगिता स्वीकार की है । उपवास से शरीर, मन तथा आत्मा पर लाभदायक प्रभाव को देखकर ही उसे धर्म के अन्तर्गत स्थान दिया गया है ।

भारत के प्राचीन ऋषियों की तपस्या का उपवास एक प्रधान अंग था । बड़े-बड़े धर्माचार्य स्वयं बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तों को उसका लाभ बतलाते थे और उनका स्वयं आदर्श बनते थे, पर आजकल जो लोग धार्मिक दृष्टि से उपवास करते हैं, प्रायः सभी देशों में उन्हें धर्मांध बतलाया जाता है और उनकी हँसी उड़ाई जाती है । इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमों से एकदम अनभिज्ञ हो गये हैं । जो लोग अन्न को ही प्राण समझते हैं, उन्हीं की आँखें खोलने के लिए उपवास के सिद्धान्तों का फिर से प्रचार होने लगा है ।

तात्पर्य यह है कि उपवास के दो प्रधान उद्देश्य हैं-(१) शारीरिक स्वच्छता, आन्तरिक विकारों, विजातीय द्रव्यों, संचित विषों का निराकरण तथा (२) आध्यात्मिक उपयोग, नैतिक बुद्धि की जागृति, आत्मिक और मानसिक शुद्धि । उपवास न केवल शरीर शोधक है, प्रत्युत साथ-साथ आत्म-परिपोषक भी है ।

पवित्रता और मनोविकारों का सम्बन्ध

वैसे पवित्रता और स्वच्छता प्रधानतः एक शारीरिक कार्य माना जाता है, पर हमारे मनोविकारों से भी उसका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहता है । देखने में तो सभी सांसारिक कार्य हमारी बाह्य इन्द्रियों, हाथ-पैरों द्वारा किए जाते हैं, मर जैसा हम सभी जानते हैं, इन्द्रियों का संचालन मन

द्वारा ही होता है । हमारा मन ही भली–बुरी इच्छाएँ और अभिलाषाएँ किया करता है और उसका प्रभाव हमारे शरीर पर पूर्ण रूप से पड़ता है ।

कितने ही लोग यह ख्याल करते हैं कि काम, क्रोध, लोभ आदि मनोविकार केवल आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं, भौतिक बातों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता, पर यह विचार ठीक नहीं । परमात्मा ने मनुष्य की जिस प्रकार रचना की है उसमें भौतिक और आध्यात्मिक पहलुओं में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । भौतिक विभाग में खराबी आने से उसका प्रभाव आध्यात्मिक जीवन पर अवश्य पड़ेगा और आध्यात्मिक दोषों के उत्पन्न होने से भौतिक जीवन में भी अव्यवस्था और बुराइयों का उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है । हमारे काम, क्रोधादि एक प्रकार के वास्तविक विष हैं, जो मन में प्रवेश करके वहाँ अपना अड्डा जमा लेते हैं और हमारे भीतरी शारीरिक अंगों को गन्दा बना डालते हैं । ये विष अपने काले धुएँ से शरीर की धातुओं को विषैला बनाकर उन्हें रोगों का केन्द्र बना देते हैं । यदि इन विकारों को हटाकर जीवन को प्रसन्नता, प्रेम, सौन्दर्य और पवित्रता के भावों से भर लिया जाय तो मनुष्य बहुत ही अल्प समय में पूर्ण स्वस्थ बन सकता है और यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि स्वास्थ्य ही सौन्दर्य है, एक ही वस्तु के यह दो पहलू हैं ।

काम वासना विकार

नर और मादा में लौह–चुम्बक जैसा स्वाभाविक आकर्षण होने के कारण दोनों जोड़े से रहना पसन्द करते हैं । जो पशु–पक्षी जितने ही विकसित होते जाते हैं, वे यौन–आकर्षण को अनुभव करते हैं और साथ–साथ रहते हैं । चकवा, सारस, कबूतर, तीतर, बत्तक, राजहंस आदि पक्षी और सिंह, हिरण, भेड़िया आदि पशु एवं साँप, मगर जैसे जीव जन्तु जोड़े से रहते हैं । जो नियमित जोड़ा चुनना नहीं जानते, वे भी समय–समय पर यौन आकर्षण के अनुसार आकर्षित होते रहते हैं और विपरीत योनि के साथ रहना पसन्द करते हैं । प्रजा की उत्पत्ति के कार्य को प्राणी भूल न जाय इसलिए प्रकृति ने उसमें एक विशेष आनन्द का भी समावेश कर दिया है । इस प्रकार विकसित जीव–जन्तु जोड़े से रहना चाहते हैं, तदनुसार मनुष्य भी चाहता है । इस आकर्षण को प्रेम के नाम से पुकारा जाता है । यही रस्सी नर मादा को साथ–साथ रहने

के लिए आपस में बाँधे रहती है । तरुण पुरुष विवाह की इच्छा करे तो यह उसका शारीरिक धर्म है, इसमें हानि कुछ नहीं, लाभ ही है ।

जोड़े से रहना बुरा नहीं है परन्तु प्रेम की स्वाभाविक शक्ति और गर्भाधान क्रिया के तात्कालिक आनन्द, इन दोनों सात्विक वस्तुओं को जब हम काम वासना के बुरे रूप में परिणति कर देते हैं तो वह शरीर के लिए बहुत ही खतरनाक वस्तु बन जाती है । जैसे भूख स्वाभाविक है और मधुर भोजन करना भी स्वाभाविक है, किन्तु इन प्राकृतिक क्रियाओं को विकृत करके जो मनुष्य चटोरा बन जाता है, दिन भर तरह–तरह के भोजन का ही चिन्तन करता है । थोड़ी–थोड़ी देर पर चाट पकौड़ी, मिठाई, खटाई, चाटता रहता है, उसकी यह विकृत आदत ही उसके सर्वनाश का कारण बन जाती है । पेट खराब होने से वह बीमार पड़ता है और शक्तिहीन होकर बहुत जल्द मर जाता है । इसी प्रकार यौन आकर्षण की स्वाभाविक क्रिया को जब कामाग्नि के रूप में परिणत कर दिया जाता है तो यह शरीर को जलाकर भस्म कर देती है । दिन भर पंखा चलाने वाली, रात भर रोशनी करने वाली, आपको सब प्रकार का सुख देने वाली, बिजली भी जब अनुचित रीति से छू ली जाती है तो वह एक झटके में ही प्राण ले लेती है ।

काम शक्ति, जीवन शक्ति का एक चिन्ह है, किन्तु उसका निर्धारित अवसर पर ही प्रयोग करना चाहिए । प्राकृतिक नियम यह है जब मादा को गर्भ धारण करने की तीव्र इच्छा हो तो नर के पास गमन करे । यही काम तृप्ति की मर्यादा है । किन्तु आजकल तो जिह्वा के चटोरपन और इन्द्रियों की लिप्सा को तृप्त करना मनुष्यों का जीवनोद्देश्य बन गया है । अमर्यादित कामोत्तेजना एक प्रकार की प्रत्यक्ष अग्नि है । कामुकता के भाव उदय होते ही शरीर की गर्मी बढ़ जाती है । श्वाँस गरम आने लगती है । त्वचा का तापमान बढ़ जाता है । रक्त का वेग तीव्र हो जाता है । एस गर्मी के दाह से कुछ धातुएँ पिघलने और कुछ जलने लगती हैं । शरीर के कुछ सत्व पिघल कर मूत्र के साथ स्रवित होने लगते हैं । देखा जाता है कि कामुक व्यक्तियों के पेशाब का रंग पीला होता है, क्योंकि उनमें पित्त, क्षार, शर्करा आदि शरीरोपयोगी वस्तुएँ मिल जाती हैं, कभी–कभी उनका पेशाब अधिक चिकना, गाढ़ा, सफेदी लिए और लसदार होता है, इसमें चर्बी, एल्ब्यूमिन, हड्डियों का सार भाग आदि मिल जाता है । जब अधिक

गरम पेशाब आता है, तो उसमें कई फास्फोरस और लोह-सत्व जैसी अमूल्य वस्तुएँ मिली रहती हैं । इस तरह कामाग्नि से शरीर के रस पिघल-पिघल कर नीचे बहते रहते हैं और देह खोखली होती जाती है । त्वचा, स्नायु तन्तु, पेशियाँ और अस्थि पिंजर उस अग्नि से जलने लगते हैं और वे मामूली रोगों से बचने की भी शक्ति को खो बैठते हैं ।

उष्णता के कारण पकी हुई चमड़ी खुरदरी, काली और सूखी, निस्तेज हो जाती है । निकट से देखने पर उसका शरीर बिलकुल रूखा और मुर्दापन लिए हुए देखा जा सकता है । लकवा, गठिया, कम्प आदि बात सम्बन्धी रोग अक्सर अति मैथुन से होते हैं, यह अग्नि मस्तिष्क के लिए तो सबसे अधिक घातक हैं । स्मरण शक्ति और निश्चयात्मक शक्ति का भी लोप होने लगता है । ऐसे खण्डहर मस्तिष्क में हीन विचारों के चमगादड़ आकर इकट्ठे होने लगते हैं । यह हीन विचार उसे उद्विग्न कर देते हैं और कभी-कभी तो घर से भागकर भिखारी बन जाना, पागलपन, मद्य सेवन एवं आत्महत्या जैसी प्रवृत्तियों तक ले पहुँचते हैं । कामुकता का निश्चित परिणाम आसक्ति है । निर्बलता या कमजोरी साथ में अपना एक बड़ा कुटुम्ब लेकर आती है । उसके यह बाल बच्चे शरीर के जिस कोने में जगह पाते हैं, उसी में डेरा डाल लेते हैं । सिर में दर्द, रीढ़ में दर्द, पैरों में भड़कन, आँखों तले अन्धेरा, भूख न लगना, उदासीनता, निराशा, मुँह कड़ुवा रहना, दस्त साफ न होना, कफ गिरना, दाँतों का दर्द, खुश्की, जलन, निद्रा की कमी, यह सब रोग कमजोरी के बाल-बच्चे हैं । यह अपनी माता के साथ रहते हैं । कोई दवा-दारू इन्हें हटा नहीं सकती । दूषित काम वासना केवल शारीरिक निर्बलता ही उत्पन्न नहीं करती वरन् ऐसे गन्दे रोगों को भी पैदा करती है जो शारीरिक पवित्रता को पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं ।

क्रोध के भयंकर परिणाम

डांक्टर अरोली और केनन ने अनेक परीक्षणों के बाद यह घोषित कर दिया है कि क्रोध के कारण अनिवार्यतः उत्पन्न होने वाली रक्त की विषैली शर्करा हाजमा बिगाड़ने के लिए सबसे अधिक भयानक है । आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के स्वास्थ्य निरीक्षक डा.-हेमन वर्ग ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है-'एक बार परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों में अधिकांश चिड़चिड़े मिजाज के थे । पागलखानों की रिपोर्ट बताती है कि

'क्रोध को लेकर सोना अपनी बगल में जहरीले साँप को लेकर सोना है ।' सचमुच क्रोध की भयंकरता सब दृष्टियों से बहुत अधिक है ।

इस महाव्याधि का शरीर और मन पर जो दूषित असर होता है, वह जीवन को पूरी तरह असफल बना देता है, अशान्ति, आशंका, आवेश उसे घेरे रहते हैं । पास पड़ौसियों की दृष्टि में वह घृणा का पात्र बन जाता है । गृह–कलह छिड़ा रहता है । प्रसिद्ध दार्शनिक सोना कहते हैं–"क्रोध शराब की तरह मनुष्य को विचार शून्य, दुर्बल एवं लकवे की तरह शक्तिहीन बना देता है । दुर्भाग्य की तरह यह जिसके पीछे पड़ जाता है, उसका सर्वनाश करके ही छोड़ता है । डॉक्टर पूनमचन्द खत्री का कथन है कि–"क्रोध का मानसिक रोग किसी शारीरिक रोग से कम नहीं है । दमा, यकृति–वृद्धि, गठिया, आम रोग जिस प्रकार आदमी को घुला–घुला कर मार डालते हैं, उसी प्रकार क्रोध का कार्य होता है । कुछ ही दिनों में क्रोधी के शरीर में कई प्रकार के विष उत्पन्न हो जाते हैं, जिनकी तीक्ष्णता से भीतरी अवयव गलने लगते हैं ।"

न्यूयार्क के वैज्ञानिकों ने परीक्षा करने के लिए गुस्से में भरे हुए मनुष्य का कुछ बूँद खून लेकर पिचकारी द्वारा खरगोश के शरीर में पहुँचाया । नतीजा यह हुआ के बाईस मिनट बाद खरगोश आदमियों को काटने दौड़ने लगा । पैंतीसवें मिनट पर उसने अपने आप को काटना शुरू कर दिया और एक घण्टे के अन्दर पैर पटक–पटक कर मर गया । क्रोध के कारण उत्पन्न होने वाली विषैली शकर खून को बहुत अशुद्ध कर देती है । अशुद्धता के कारण चेहरा और सारा शरीर पीला पड़ जाता है । पाचन शक्ति बिगड़ जाती है । नसें खिंचती हैं एवं गर्मी, खुश्की का प्रकोप रहने लगता है । सिर का भारीपन, आँखों तले अन्धेरा, कमर में दर्द, पेशाब का पीलापन, क्रोध जन्य उपद्रव हैं । अन्य अनेक प्रकार की व्याधियाँ उसके पीछे पड़ जाती हैं । एक अच्छी होती है तो दूसरी उठ खड़ी होती है और रात–दिन क्षीण होकर मनुष्य अल्पकाल में ही काल के गाल में चला जाता है ।

क्रोध एक भयंकर विषधर है । जिसने अपनी आस्तीन में इस साँप को पाल रखा है, उसका ईश्वर ही रक्षक है । एक प्राचीन नीतिकार का कथन है कि "जिसने क्रोध की अग्नि अपने हृदय में प्रज्ज्वलित कर रखी है, उसे चिता से क्या प्रयोजन ? अर्थात् वह तो बिना चिता के ही जल जायगा । ऐसी महाव्याधि से दूर रहना ही कल्याणकारी है, जिन्हें

क्रोध की बीमारी नहीं है, उन्हें पहले से ही सावधान होकर इससे दूर रहना चाहिए और जो इसके चंगुल में फँस चुके हैं, उन्हें पीछा छुड़ाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए ।

क्रोध का कारण प्रायः हमारा झूँठा अहंकार या अज्ञान होता है । "प्रत्येक व्यक्ति हो हमारी आज्ञा या बात माननी चाहिए ।" इस दूषित भावना के कारण प्रायः क्रोध भड़का करता है । इसके लिए हमको सदैव अपनी वास्तविक स्थिति पर विचार करके चित्त को शान्त करने का अभ्यास करना चाहिए । प्रतिज्ञा कर लीजिए कि 'अपने दुश्मन क्रोध को पास न फटकने दूँगा । जब आवेगा तभी उसका प्रतिकार करूँगा ।" हो सके तो इन शब्दों को लिख कर किसी ऐसे स्थान पर टाँग लीजिए, जहाँ दिन भर निगाह पड़ती रहे । जब क्रोध आवे, तभी अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करना चाहिए एवं कुछ देर के लिए चुप्पी साध लेनी चाहिए । क्रोध के सम्य ठण्डे पानी का एक गिलास पीना आयुर्वेदीय चिकित्सा है । इससे मस्तिष्क और शरीर की बढ़ी हुई गर्मी शान्त हो जाती है । एक विद्वान का मत है कि जिस स्थान पर क्रोध आवे, वहाँ से उठकर कहीं चले जाना या किसी और काम में लग जाना अच्छा है । इससे मन की दशा बदल जाती है और चित्त का झुकाव दूसरी ओर हो जाता है । एक योगाभ्यासी सज्जन बताते हैं कि क्रोध आते ही गायत्री मन्त्र का जप करने लगना अनुभूत और परीक्षित प्रयोग है । इन उपायों से आप क्रोध को भगाकर अपने मन को पवित्र बना सकेंगे ।

लोभ से जीवन नष्ट होता है

निरन्तर कृपणता, कंजूसी और जमा करने के विचार जब मस्तिष्क में आते रहते हैं तो वे कुछ समय बाद आदत का रूप धारण कर लेते हैं । बहुत जमा करने और खर्च के समय अनावश्यक कंजूसी को लोभ कहा जा सकता है । लोभ की विचारधारा जब सुप्त मन पर असर करती है, तो उसका स्वास्थ्य पर अनिष्टकर प्रभाव पड़ता है । रुपया-पैसा यथार्थ में एक भोग-वस्तु है । ज्ञानवान मनुष्य इसे हाथ का मैल बताते हैं । धन का वास्तविक काम उसको सदुपयोग में लाना है । जैसे पानी पीने की वस्तु है, उसके पीने या प्रयोग करने में ही आनन्द है । पानी को जो अनावश्यक मात्रा में जोड़-जोड़ कर जमा करता है, वह अयोग्य कार्य करता है । जमा किया हुआ पानी कुछ दिन बाद सड़ने

लगेगा और चारों ओर दुर्गन्ध पैदा करेगा । शरीर और मन का स्वाभाविक धर्म है कि वह जिसे लेता है, उसे त्यागता भी है । मन में विचारों का आवागमन लगा रहता है । एक प्रकार के विचार आते हैं तो दूसरी प्रकार के जाते हैं । मन में विभिन्न प्रकार के विचार हर घड़ी उठते रहने का विधान परमात्मा ने बहुत सोच-समझकर बनाया है, इससे बढ़ती हुई नदी के जल की तरह मस्तिष्क निर्मल होता रहता है, यदि एक ही प्रकार के विचार किए जायें और ये निम्न श्रेणी के हों तो मनुष्य भयंकर विपत्ति में पड़ सकता है । आकर्षण के विश्वव्यापी नियम के अनुसार उसी प्रकार के विचार उस आदमी के पास इतनी अधिक मात्रा में इकट्ठे हो जायेंगे कि वह डर जायगा और बीमार हो जायेगा या मर जायगा । लोभी मनुष्य निरन्तर धन का ही चिन्तन करता रहता है । उसे पैसा अधिक जोड़ने की ही चिन्ता बनी रहती है, इस प्रकार वह 'हाथ के मैल' को छुड़ाने की अपेक्षा उसे जमा करने का प्रकृति विरुद्ध प्रयत्न करता है । इसका असर गुप्त मन पर होता है । पाठक यह तो जानते ही होंगे कि शरीर की श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया, खून का दौरा, रसों का पचना, मल-मूत्र का परित्याग आदि दैनिक जीवन की क्रियायें सुप्त मन के द्वारा होती रहती हैं । हमारा चेतन मन इन क्रियाओं में दखल नहीं देता, किन्तु सुप्त मन की स्थिति के अनुसार क्षण भर में बड़ा भारी परिवर्तन हो सकता है । मनोविज्ञान वेत्ताओं ने शरीर की क्रियाओं पर सुप्त मन का पूरा-पूरा अधिकार देखते हुए उस मन पर प्रभाव डालकर समस्त बीमारियों को दूर करने में सफलता प्राप्त की है । हमारे स्वभाव के दोष और अन्य बुरी आदतें भी इस प्रकार के मानसिक उपचार से सुधर सकती हैं ।

आध्यात्मिक पवित्रता का मार्ग

शारीरिक और मानसिक पवित्रता के साथ ही आध्यात्मिक पवित्रता भी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना आत्मोन्नति, जो कि मनुष्य का प्रधान लक्ष्य है, सम्भव नहीं होती । आध्यात्मिक पवित्रता द्वारा ही मनुष्य में सच्चे प्रेम, भक्ति, दया, उदारता, परोपकार आदि की उत्पत्ति हो सकती है और देवत्व का विकास हो सकता है ।

यह सृष्टि त्रिगुणमयी है । सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन गुणों से संसार के समस्त जड़-चेतन ओत-प्रोत हो रहे हैं । तमोगुण में

आलस्य (अशान्ति युक्त मूढ़ता) रजोगुण में क्रियाशीलता (चंचलता) सतोगुण में शान्ति युक्त क्रिया (पवित्रता और अनासक्त व्यवहार) होता है ।

प्रायः तमोगुण और रजोगुण की ही लोगों में प्रधानता होती है । सतोगुण आजकल बहुत कम मात्रा में पाया जाता है । क्योंकि उच्च आध्यात्मिक साधना के फलस्वरूप ही सतोगुण का विकास होता है । सतोगुण की वृद्धि ही पवित्रता और कल्याण का हेतु है । सात्विकता जितनी बढ़ती जायगी उतना ही प्राणी अपने लक्षके निकट होता जायगा । इसके विपरीत रजोगुण की अधिकता से मनुष्य भोग और लोभ के कुचक्र में फँस जाता है और तमोगुणी तो तीव्र गति से पतन के गर्त में गिरने लगता है ।

तमोगुण प्रधान मनुष्य आलसी, अकर्मण्य, निराश और परमुखापेक्षी होता है । वह हर बात में दूसरों का सहारा टटोलता है । अपने ऊपर, अपनी शक्तियों के ऊपर उसे विश्वास नहीं होता । दूसरे लोग किसी कुपात्र को सहायता क्यों दें ? जब उसे किसी ओर से समुचित सहयोग नहीं मिलता तो खिन्न और क्रुद्ध हो कर दूसरों पर दोषारोपण करता है और लड़ता–झगड़ता है । लकवा मार जाने वाले रोगी की तरह उसकी शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं और जड़ता एवं मूढ़ता में मनोभूमि जकड़ जाती है । शरीर में स्थूल बल थोड़ा बहुत भले ही रहे पर प्राण–शक्ति, आत्मबल, शौर्य एवं तेज का नितान्त अभाव ही रहता है । ऐसे व्यक्ति बहुधा कायर, कुकर्मी, क्रूर, आलसी और अहंकारी होते हैं । उनके आचरण, विचार, आहार, कार्य और उद्देश्य सभी मलीन होते हैं ।

तमोगुण पशुता का चिन्ह है । चौरासी लाख योनियों में तमोगुण ही प्रधान रहता है । तमोगुणी संस्कार जिस मनुष्य के जीवन में प्रबल हैं उसे नर–पशु कहा जाता है । इस पशुता से जब जीव की कुछ प्रगति होती है, तब उसका रजोगुण बढ़ता है । तम की अपेक्षा उसके विचार और कार्यों में राजसिकता अधिक रहती है ।

रजोगुणी में उत्साह अधिक रहता है, फुर्ती, चतुराई, चालाकी, होशियारी, खुदगर्जी, दूसरों को उल्लू बनाकर अपना मतलब गाँठ लेने की योग्यता खूब होती है । ऐसे लोग बातून, प्रभावशाली, क्रियाशील, परिश्रमी, उद्योगी, साहसी, आशावादी और विलासी होते हैं । उनकी इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं । स्वादिष्ट भोजन, बढ़िया ठाठ–बाट, विषय वासना की इच्छा सदैव मन में लगी रहती है । कई बार तो वे भोग और परिश्रम में इतने निमग्न हो जाते हैं कि अपना स्वास्थ्य तक गँवा बैठते हैं ।

यारबाशी, गप-शप, खेल-तमाशे, नृत्य-गायन, भोग-विलास, शान-शौकत, रौब-दॉव, ऐश आराम, शाबासी वाहवाही, बड़प्पन और धन-दौलत में रजोगुणी लोगों का मन खूब लगता है । सत्य और शिव की ओर उनका ध्यान नहीं जाता, पर 'सुन्दरम्' को देखते ही लट्टू हो जाते हैं । ऐसे लोग बहिर्मुखी होते हैं, बाहर की बातें तो बहुत सोचते हैं पर अपनी आन्तरिक दुर्बलता पर विचार नहीं करते, अपनी बहुमूल्य योग्यताओं परिस्थितियों और शक्तियों को अनावश्यक रूप से हलकी, छछोरी और बेकार की बातों में बर्बाद करते रहते हैं ।

सतोगुण की वृद्धि जब किसी मनुष्य में होती है तो अन्तरात्मा में धर्म, कर्तव्य और पवित्रता की इच्छा उत्पन्न होती है । न्याय और अन्याय का, सत् और असत् का, कर्तव्य और अकर्तव्य का, ग्राह्य और त्याज्य का भेद स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगता है । तत्वज्ञान, धर्मविवेक, दूरदर्शिता, सरलता, नम्रता और सज्जनता से उसकी दृष्टि भरी रहती है । दूसरों के साथ करुणा, दया, मैत्री, उदारता, स्नेह, आत्मीयता और सद्भावना का व्यवहार करता है, कुच-कांचन की तुच्छता को समझकर वह तप, साधना, स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, दान और प्रभु शरणागति की ओर अग्रसर होता है ।

सात्विकता की अभिवृद्धि होने से आत्मा में असाधारण शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता, प्रफुल्लता एवं आनन्द रहता है । उसका प्रत्येक विचार और कार्य पुण्यमय होता है, जिससे निकटवर्ती लोगों को भी ज्ञात और अज्ञात रूप से बड़ी शान्ति एवं प्रेरणा प्राप्त होती है ।

तमोगुण सबसे निकृष्ट अवस्था है । रजोगुण उससे कुछ ऊँचा तो है, पर मनुष्यता से नीचा है । मनुष्य का वास्तविक परिधान सतोगुण है । मनुष्यता का निवास सात्विकता में है । आत्मा को तब तक शान्ति नहीं मिलती जब तक कि उसे सात्विकता की परिस्थिति प्राप्त न हो । जो मनुष्य जितना सतोगुणी है वह परमात्मा के उतना ही समीप है । इस दैवी तत्व को प्राप्त करके जीव धन्य होता है, क्योंकि जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का एक मात्र साधन सतोगुण ही है । प्रत्येक पवित्र-जीवन के प्रेमी को अपनी सात्विकता की अभिवृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

वास्तव में सतोगुणी जीवन सब प्रकार की पवित्रता की जड़ है । इससे मनुष्य में श्रेष्ठ गुणों का प्रादुर्भाव होता है और वह हर तरह के मलिन आचरणों से दूर रहकर शुद्ध और पवित्र बन सकता है । सतोगुणी

मनुष्य दैनिक रहन-सहन, खान-पान, आहार-विहार सब बातों में शुद्धता का विचार रखता है और इसके परिणाम स्वरूप उसके मन, वचन और कर्म में अशुचि भावनाओं का प्रवेश नहीं हो पाता । वह सब के लिए हितकारी विचार करता है, दूसरों को अच्छी लगने वाली बातें मुँह से निकालता है और दूसरों-सबकी भलाई के काम करता है । ऐसा व्यक्ति केवल आत्मिक और मानसिक पवित्रता का ही विचार नहीं रखता, वरन् उसके चारों ओर का वातावरण पवित्र रहता है, प्रत्येक वस्तु में शुद्धता का विचार रखा जाता है और कोई भी गन्दा काम नहीं किया जा सकता । जैसा हम अन्यत्र लिख चुके हैं कि शरीर का राजा मन है और मन पर आत्मा द्वारा शासन किया जा सकता है । इसलिए पवित्र जीवन का वास्तविक उद्गम स्थान आत्मा ही है । अगर हम आत्मा की शुद्धता और पवित्रता का ध्यान रखेंगे तो हमारा शेष समस्त जीवन स्वयं ही पवित्रता की ओर प्रेरित होगा और आत्मा उसी अवस्था में जागृत और उच्च भाव सम्पन्न होती है, जब उसकी प्रवृत्ति सतोगुण की ओर हो । गीता में भी कहा है-

सर्व द्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवद्धं सत्त्वमित्युत ।।

अर्थात्-"जिस काल में देह में तथा अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनता और बोध शक्ति उत्पन्न होती है उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा है ।" और भी कहा है-

सत्वात्संजायने ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमाद मोहौ तमसो भवतोऽज्ञान मेव च ।।

अर्थात्-सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निस्सन्देह लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान की उत्पत्ति होती है ।

पवित्रता में ही जीवन की सार्थकता है

पवित्रता मानव-जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है । मनुष्य का विकास और उत्थान केवल ज्ञान अथवा भक्ति की बातों से ही नहीं हो सकता, उसे व्यावहारिक रूप से भी अपनी उच्चता और श्रेष्ठता का प्रमाण देना आवश्यक है और इसका प्रधान साधन पवित्रता ही है । जो व्यक्ति गन्दे वातावरण में रहता है अथवा गन्दे विचार प्रकट करता है,

उसके पास जाने या ठहरने की किसी को रुचि ही नहीं होती । ऐसे व्यक्ति से सभी घृणा करते हैं और किसी अनिवार्य कारणवश उसके निकट जाना भी पड़े तो जल्दी से जल्दी वहाँ से हट जाना चाहते हैं ।

मनुष्य के लिए शरीर, मन, चरित्र, आचार-विचार आदि सब प्रकार की पवित्रता आवश्यक है । यदि शारीरिक पवित्रता का ध्यान रखा जायगा तो स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रह सकता और अस्वस्थ व्यक्ति कोई अच्छा काम नहीं कर सकता । इसी प्रकार मानसिक पवित्रता के बिना मनुष्य में सज्जनता, प्रेम, सद्व्यवहार के भाव उत्पन्न नहीं हो सकते और वह संसार में किसी की भलाई नहीं कर सकता । जिस व्यक्ति में चरित्र की पवित्रता नहीं है, वह कभी संसार में प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता । यदि मुँह पर नहीं तो परोक्ष में सब लोग उसकी निन्दा और बुराई ही करेंगे । आचार-विचार की पवित्रता ने यद्यपि आजकल ढोंग का रूप धारण कर लिया है और इस कारण अनेक आधुनिक विचारों के व्यक्ति उसे अनावश्यक समझने लगे हैं, पर वास्तव में मनुष्य की अध्यात्मिक उन्नति का सम्बन्ध आचार-विचार की पवित्रता से है । खान-पान में शुद्धता और पवित्रता का ध्यान न रखने से केवल हमारा स्वास्थ्य ही खराब नहीं होता वरन् हमारा मानसिक संयम भी नष्ट हो जाता है और हमको चटोरपन की हानिकारक आदत लग जाती है । इसी प्रकार विचारों में शुद्धता का ख्याल न रखने से काम, क्रोध, लोभ आदि की हानिकारक भावनाएँ बढ़ती हैं ।

इसलिए यदि आप वास्तव में अपने कल्याण की अभिलाषा रखते हैं तो अपने भोजन, वस्त्र, निवास स्थान, देह, मन, आत्मा आदि सबकी स्वच्छता और पवित्रता का ध्यान रखना आवश्यक है । इन सबकी सम्मिलित पवित्रता से ही जीवन में उस निर्मलता और प्रकाश के भाव का विकास हो सकेगा जिसके द्वारा आप वास्तविक मनुष्य कहलाने के अधिकारी बन सकते हैं । आपको केवल अपनी व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान रखना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् आपके आस-पास भी कहीं गन्दगी, अस्वच्छता दिखलाई नहीं पड़नी चाहिए, क्योंकि मनुष्य सामाजिक जीव है और उसके जीवन का एक क्षण भी बिना दूसरों के सहयोग के व्यतीत नहीं हो सकता । इसलिए उसकी पवित्रता तभी कायम रह सकती है जब कि समस्त समाज में पवित्र-जीवन की भावना समाविष्ट हो जाय ।

मुद्रक-युग निर्माण प्रेस, मथुरा